पुस्तकीय जानकारी के आधार पर यह जान पाना बड़ा कठिन है कि वह देह से भिन्न है। अतएव जीव की देहात्मबुद्धि के सदुपयोग के लिये भक्तियोग में श्रीकृष्ण के अर्चा-विग्रह की आराधना की जाती है। अवश्य ही, मन्दिर में विराजमान भगवत्-विग्रह की पूजा करना पत्थर को पूजना नहीं है। वैदिक शास्त्रों का प्रमाण है कि उपासना के सगुण-निर्गुण, दो भेद हैं। मन्दिर में भगवत्-विग्रह की पूजा सगुण उपासना कहलाती है। परन्तु पाषाण, काष्ठ, रंग आदि प्राकृत गुणों के रूप में प्रकट होने पर भी भगवत्-विग्रह वास्तव में प्राकृत नहीं है, क्योंकि श्रीभगवान् अद्वय-स्वरूप हैं।

अर्चा-विग्रह का तत्त्व एक स्थूल उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि हम मार्ग में स्थित किसी डाक के डिब्बे में अपना पत्र डालते हैं तो वह सहज में गन्तव्य तक पहुँच जाता है। किन्तु जिस-किसी अनधिकृत डिब्बे का उपयोग करने से हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसी भाँति, अर्चा-विग्रह श्रीभगवान् का अधिकृत (प्रामाणिक) रूप है। यह अर्चा-विग्रह श्रीभगवान् का अवतार है; इसके माध्यम से श्रीभगवान् हमारे द्वारा निवेदित सेवा को स्वीकार करते हैं। श्रीभगवान् सर्वसमर्थ एवं सर्वशक्तिमान् हैं; अतः अपने अर्चा-विग्रह रूपी अवतार के द्वारा वे कृपापूर्वक भक्त की सेवा को ग्रहण कर सकते हैं। उनकी इस अहैतुकी कृपा से बद्धजीव को उनकी सेवा का अवसर सुगमता से सुलभ हो जाता है।

इस प्रकार भक्त के लिये श्रीभगवान् की अविलम्ब और सीधी प्राप्ति सब प्रकार से सुगम और सुखावह है, जबकि निराकारवादियों का पथ क्लेशमय है। निराकार-वादियों के लिये उपनिषद् आदि वैदिक शास्त्रों से परमसत्य के निराकार स्वरूप को समझना आवश्यक है। साथ ही, भाषा का ज्ञान, इन्द्रियों से अतीत भावों और इन सभी पद्धतियों की अनुभूति की भी अपेक्षा है। साधारण मनुष्य के लिए यह सब सरल नहीं है। दूसरी ओर, भक्तियोग के परायण कृष्णभावनाभावित पुरुष प्रामाणिक गुरु का आश्रय ग्रहण करने, अर्चा-विग्रह की वन्दना करने, भगवद्गुणगान-श्रवण तथा भगवत्प्रसाद स्वीकार करने मात्र से सुगमतापूर्वक श्रीभगवान् को प्राप्त हो जाता है। निस्सन्देह निराकारवादी व्यर्थ में एक ऐसे कष्टसाध्य मार्ग को अंगीकार किए हुए हैं, जिससे अन्त में भी परमसत्य की प्राप्ति होगी, यह निश्चित नहीं है। परन्तु भक्तजन किसी भी संकट, क्लेश अथवा कठिनाई के बिना सीधे-सीधे श्रीभगवान् को प्राप्त हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में भी ऐसा एक श्लोक है। उसके अनुसार, अन्त में श्रीभगवान् की शरण लेना जीवमात्र के लिये आवश्यक है (इस शरणागति का ही नाम भक्ति है)। पर यदि कोई सम्पूर्ण जीवन, 'यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म नहीं है', इस प्रकार मीमांसा करने में ही व्यतीत कर दे, तो परिणाम में क्लेश ही क्लेश हाथ लगेगा। अतएव इस श्लोक में श्रीभगवान् का परामर्श है कि स्वरूप-साक्षात्कार के इस निराकार पथ को ग्रहण न करे, क्योंकि इसका अन्तिम परिणाम अनिश्चित है।

जीवात्मा का निज स्वरूप सनातन है। यदि वह पूर्ण-तत्त्व में लीन होना चाहे,